

धर्म की दिशा

□ डॉ० भगवतीलाल राजपुरोहित

धर्म के ज्ञाता तथा उसके प्रचारक भारत में साधु कहलाते हैं। दूसरों का काम साधने से यह शब्द सार्थक है। वैसे संसार के अन्य धर्मों में भी ऐसे धर्मज्ञ होते ही हैं। धर्म-प्रचार का काम लोकोपकार का तो है ही, बड़ा कष्टसाध्य, समयसाध्य और बुद्धिसाध्य भी है। यह सब सांसारिक बंधनों के रहते साधा नहीं जा सकता। इसलिए गृहत्याग की ओर उन्मुख होते हैं। गृहत्याग कर धर्म सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर उसका जन-जन में प्रचार करने में ही अपना जीवन अर्पित कर देते हैं। यह त्याग भारतीयों के लिए सदा से प्रणम्य रहा है। इसलिए भारत में साधुओं का सम्मान सदा से रहा है। शासक भी उनके सामने सदा झुकते आये हैं।

इन धर्मज्ञों ने धर्मग्रन्थों की रक्षा की। धर्म और दर्शन का अध्ययन-चिन्तन कर नये धर्मग्रन्थ निमित्त किये। भविष्य के लिए नये ज्ञानपंथों का प्रवर्तन किया। समय और परिस्थिति के अनुसार नये-नये नियम बनाये सदाचार के, लोकाचार के साधुओं सम्बन्धी भी, गृहस्थों सम्बन्धी भी। समय-समय पर औचित्य-अनौचित्य के आधार पर नियम बनते, विस्मृत होते चले गये। वास्तव में सभी नियम युगसापेक्ष होते हैं। जो युग का साथ नहीं देते, वे त्याज्य हो ही जाते हैं। पर ये नियम ही कालान्तर में परम्पराबद्ध होकर रूढ़ि बन जाते हैं। रूढ़ि बनने पर उसके कालौचित्य आदि का कोई तर्क नहीं चलता। फिर तो वह अन्धविश्वास बन जाता है। सब उसे अपनाते हैं पर आँख मूंद कर। जब आँख मूंद कर चलने लगते हैं तो कहीं भी कुएँ-गड्ढे में गिरने की सम्भावना बराबर रहती है। तब दोष किसका? भला आँखों के रहते अन्धे बनने का परिणाम भी तो यही होता है। पर कठिनाई भी होती है। रूढ़ि को तोड़े कौन? जो तोड़ेगा वही समाज के रूढ़िवादी वर्ग द्वारा प्रताड़ित होगा। उसे साहस करना होगा। अन्धविश्वास के जुए को उतार फेंकना साहस का काम है। हर कोई वह काम कर नहीं सकता। पर जो कर लेता है वही सच्चा साधु है, चाहे वह संन्यस्त हो या न हो। गृहस्थी में रहकर भी ऐसी साधुता कई लोग बड़ी सफलता से निभा जाते हैं। ऐसी साधुता सबके द्वारा प्रशंसित तो होती ही है।

देश और समाज का जागरूकता से मार्गदर्शन करने से साधुत्व को सार्थकता प्राप्त होती है। उसके लिए व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। धर्म की लोकोपकारी धाराओं को समाजोन्मुखी और राष्ट्रोन्मुखी कर देने से वह अधिक लोकोपयोगी हो सकता है। यह कार्य सरल नहीं है, तो असाध्य भी नहीं है। इससे धर्म सार्थक होता है। इसे साधने वाले का प्रयास सार्थक होता है। उससे वह समाज तथा राष्ट्र की भी कुछ सेवा कर पाता है जिसका वह अंश है, जिसका वह प्रतिनिधि है।

केवल पूजा-पाठ उस धर्म का चिह्न हो सकता है। पर वही उसका लक्ष्य बन जाये तो वह समाज के लिए उपयोगी नहीं रह जाता। धर्म की सार्थकता उसकी लोकोपयोगिता में है।

शांति के समय वह धर्म और दर्शन का चिन्तन परिणाम प्रस्तुत करे, सदाचार का पथ प्रशस्त करे। अशांति के समय भी वह सदाचार के आयामों का प्रचार-प्रसार करे। पर न केवल यही बल्कि उन अशांत क्षेत्रों में पहुँचकर अपनी बात मजबूती के साथ कहे। यह साहस का काम है पर वही साहस उपयोगी है। सुदृढ़ साहस से अहिंसा का मार्गदर्शन करने वाला साहस प्रशंसनीय है। उसके लिए स्वयं को होम देना पड़ता है पर उस आहुति में भी उदात्तता रहती है, उत्सर्ग रहता है, जो सर्वश्लाघ्य होता है। उस उत्सर्ग की सभी श्लाघा करते हैं। मित्र भी, शत्रु भी। स्वधर्मी भी, विधर्मी भी। जो श्लाघा सर्वव्यापी हो, वही सच्ची श्लाघा है। जिसकी प्रशंसा शत्रु भी करे, वही प्रशंसा है। गांधीजी की प्रशंसा इसीलिए सार्थक है। अहिंसा पूजा की वस्तु नहीं है। पूजा से वह कुंठित होती है। वह है साधना का मार्ग। इसे साधकर गांधी गांधी बन गये। कर्मक्षेत्र में उसे साधने की आज फिर आवश्यकता है। आवश्यकता के समय उसका कार्यान्वयन हो जाने पर ही उसकी सार्थकता है। आज भ्रष्टाचार का बोलबाला है। सत्य किसी अनजान गुहा में जाकर छिपा बैठा है। हिरण्य ने सत्य के पात्र का मुख ढक दिया है। यह तो लोकयात्रा है। उस हिरण्यपात्र को हटाने का प्रयास ही सच्ची साधुता है। साथ के लोभ में सभी व्यापारी परिग्रही बन जाते हैं। एक साथ पर असंख्यों की दुर्गति। उस मार्ग पर भी विचार होना ही चाहिए। अस्तेय के उपदेश से काम नहीं चलेगा। चोरी की दिशाएँ खोजकर उन पर आघात करना होगा। दहेज प्रथा, बलात्कार जैसे घृणित मार्गों से लोगों का मन हटा पाये तो धर्म सार्थक है, तो वे उपदेश सार्थक हैं, तो वे व्याख्यान सार्थक हैं, तो वे धर्मग्रन्थ सार्थक हैं। अन्यथा किस काम के वे सब? समाज में अनाचार बढ़ते रहें, धर्माधिकारी चुपचाप उन्हें देखते सहते रहें। यह तो अनाचार को उनकी मौन स्वीकृति है।

समाज उनसे मार्गदर्शन चाहता है। सच्चे मार्गदर्शन को पूरा समाज स्वीकृत करता है। उस स्वीकृति के लिए मार्गदर्शक को आगे आना होगा। आगे वही आ सकेगा जिसके पास हल है। हल उसके पास ही होता है जिसके पास बुद्धि और उत्सर्ग की भावना और दृढ़ आत्मशक्ति है।

धर्म जनता से अपेक्षा करता है पर जनता की भी धर्म से अपेक्षा है। धर्म लोकोपकार के लिए सही अर्थों में उन्मुख हो तो ही उसकी सार्थकता है। धर्म की वह मानवता की बड़ी सेवा होगी। वही सेवा सार्थक होगी। वही धर्म सत्य है, वही शिव है, वही सुन्दर है। क्योंकि धर्म धर्म के लिए नहीं होता उसका लक्ष्य मानव का अभ्युदय है। □□

—१२, बीर दुर्गादास मार्ग,
उज्जैन (म० प्र०)